स्वाधीनता का अनुभव और राष्ट्रीय अस्मिता

गिरीश्वर मिश्र

Girishwar Misra, Ph.D. FNA Psy,
Special Issue Editor Psychological Studies (Springer)
Former National Fellow (ICSSR)
Ex Vice Chancellor,Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya,
Wardha (Mahaaraashtra)

आधुनिक अर्थों में भारत आज एक स्वाधीन और प्रभुतासंपन्न लोकतांत्रिक देश है जो अब आजादी के ' *अमृत महोत्सव'* मनाने को तत्पर है, यानी देश की अनवरत यात्रा के पूरे पचहत्तर साल होने जा रहे हैं . यह देश के लिए निश्चय ही बड़े गौरव का अवसर है . बड़े संघर्ष और बलिदान के बाद देश को आजादी मिल सकी थी. आजादी की लड़ाई में अनेक तरह की विचारधाराएं शामिल थीं और देश के हर कोने से इस महान यज्ञ में आहुतियाँ पड़ी थीं. स्थानाभाव के कारण सबका उल्लेख करना संभव नहीं है तथापि यह रेखांकित करना जरूरी है कि बाल गंगाधर तिलक , गोपाल कृष्ण गोखले , लाला लाजपत राय , बिपिन चन्द्र पाल जैसे विचारवान नेताओं ने व्यापक चिंतन से स्वाधीनता वैचारिक आधार शिला तैयार की . भगत सिंह , चन्द्र शेखर आजाद , खुदी राम बोस, राम प्रसाद बिस्मिल जैसे आदमी क्रांतिकारी , नेता जी सुभाष चन्द्र बोस जैसे महानायक ने प्रखर और बड़े ही कड़े ढंग से अंग्रेजी शासन का प्रतिकार किया और चुनौती दी . गुरुदेव रबीन्द्र नाथ टैगोर , सुब्रह्मन्य भारती , बंकिम चन्द्र चटर्जी और काजी नाजुरल इस्लाम जैसे साहित्यिक रचनाकारों ने रचना शीलता के साथ स्वतंत्रता संग्राम को धार दी. महात्मा गांधी , नेहरू , राजेन्द्र प्रसाद और पटेल जैसे जन नेताओं ने बड़ी गहनता से इस लड़ाई में विभिन्न धर्मों, जातियों और क्षेत्रों के लोगों को साथ लिया . महिलाओं ने भी सरोजनी नायडू , बेगम रुकैया आदि के साथ स्वतंत्रता के संग्राम में भाग लिया. बाबा साहब अम्बेडकर ने दलितों और वंचितों की पीड़ा को मुखर किया. उन सबके सामने एक ही ध्येय था कि किसी भी तरह देश को अंग्रेजों के चंगुल से छुड़ाना है. 'भारत माता की जय' के उद्घोष के साथ भारत के वीर सपूत मर मिटने को आतुर रहते थे. अंग्रेजों के उत्पीड़न से समाज के हर वर्ग के लोग बुरी तरह त्रस्त हो रहे थे थे और अपना विरोध कई तरह से दर्ज करा रहे थे . अंग्रेज हुक्मरानों को यह जता दिया गया कि भारत पर उनकी हुकूमत न सही है न सह्य. महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन विश्व में अहिंसक विरोध का अनूठा उदाहरण बन गया . करो या मरो के आवाहन के साथ ' अंग्रेजों भारत छोडो' का नारा रंग लाया . कांग्रेस के सारे नेता जेल में बंद कर दिए गए थे. इस आन्दोलन को दबा देने की भरपूर कोशिश हुई . पर धीरे धीरे अंग्रेजों को लगा कि भारत पर शासन करना उनके बस का नहीं है।

अंतत : अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर विवश होना पडा. सन 1857 में जो संग्राम शुरू हुआ था उसकी पूर्णाहुति 1947 में पंद्रह अगस्त को हुई . भारत को आजादी मिली . इस स्वाधीनता को एक औपचारिक या कानूनी वैधता के साथ स्वीकार किया गया था . जब अंग्रेजों ने इंग्लैण्ड वापसी की थी तो अखंड भारत को दो भागों में विभाजित कर एशिया के इतिहास और भूगोल में एक नया अध्याय जोड़ दिया था . इस घटना क्रम ने जो हस्तक्षेप किया वह कई अर्थों में पीड़ादायी था और उसके प्रत्यक्ष और

अप्रत्यक्ष परिणाम देश भुगतता आ रहा है. हिंसा , अस्थिरता , अविश्वास और संघर्ष के कुछ ऐसे बीज पड़े कि सात दशक बाद भी छुटकारा नहीं मिल पा रहा है. तीन युद्ध हुए और आतंकी साया निरंतर मंडरा रहा है. देश की अखंड स्वाधीनता को सुरक्षित बनाए रखना चौकस निगरानी और तैयारी की अपेक्षा करता है. आज सियाचिन जैसे अति दुर्गम स्थान पर सेना बनाए रखना और लगातार सामरिक तथा अन्य संसाधन उपब्ध कराना बड़ी चुनौती है.

स्मरणीय है कि यहाँ अंग्रेज लगभग दो सौ साल काबिज रहे. वे व्यापारी बन कर आए थे और काल क्रम में चालबाजी के साथ राजा बन बैठे और भारत अंग्रेजी साम्राज्य का एक उपनिवेश बन गया. इस लम्बी अवधि में धन-धान्य से समृद्ध भारत का अंग्रेजों ने भरपूर आर्थिक शोषण और दोहन किया. वे जब यहाँ आए थे तो शिक्षा , उद्योग, हस्त-कला आदि अनेक क्षेत्रों में भारत एक आत्मनिर्भर देश था और कई अर्थों में आदर्श कहा जा सकता था. अंग्रेजों ने न केवल सत्ता हथियाई बल्कि यहाँ की कुशलता को पंगु बनाया , अर्थ व्यवस्था को अपने हित में मोड़ कर उच्छिन्न कर दिया और भारतीय शिक्षा पर आवरण डाल कर एक नए ढांचे को लाद दिया. अपने समाज और संस्कृति को तो हर कोई ही चाहता है और यह स्वाभाविक भी है परन्तु उसे दूसरों पर लादना असांस्कृतिक और अमानवीय है . यह द्रोह कुछ इस तरह और इतने लम्बे दौर में होता रहा कि सोच-विचार , चाल-ढाल , वेश-भूषा सब में बदलाव आने लगा . अल्पकालिक रूप से अंग्रेजियत को अपनाने के अपने फायदे भी थे. धीरे-धीरे मन बदलने लगा और भारत पर राज करने वालों की तरह सोचना हितकर लगाने लगा. इसकी दृढ शुरुआत मैकाले की शिक्षा नीति के प्रस्ताव ने की जिसकी तहत भारत के ज्ञान-विज्ञान को शिक्षा की मुख्य धारा से बाहर कर दिया गया. यह भारत के मानसिक कायाकल्प का सुनियोजित अंगेजी षडयंत्र था जिसके चंगुल में फंस कर सारी चिंतन पद्धति ही उलट पुलट गई. भारतीय अवधारणाओं और विश्व दृष्टि प्रश्नों के घेरे में आ गई और उसकी जगह पराई ज्ञान संपदा और ज्ञानार्जन की पद्धति आसीन होती गई. गांधी जी के शब्दों में भारतीय ज्ञान का बिरवा सूख गया .

वस्तुत : हमने स्वतंत्रता मिलने के साथ शासन तंत्र की जिस विरासत को अर्जित किया उसका साँचा लगभग उसी रूप में अंगीकार कर लिया यहाँ तक कि बहुतेरे अनावश्यक कानून और प्रथाएं अब तक चलती चली आ रही हैं. स्वतंत्रता मिलाने के साथ देश के नव निर्माण का प्रश्न उठा पर उसका खाका कैसा हो इसे लेकर कई विचार थे . महात्मा गांधी ने 'हिन्द स्वराज' में १९०९ में पश्चिमी (शैतानी !) सभ्यता की जो तजबीज की थी उस पर ही कायम थे . भौतिकता वादी , बाजार प्रधान दृष्टि और उपभोग की प्रबलता उन्हें बेहद घातक लगती थी . उनकी नजर में ऐसा बहुत कुछ था जो भारत की प्रकृति के हिसाब से करना चाहिए था . उनके लिए सत्य , अहिंसा , अस्तेय और अपरिग्रह किताबी आदर्श न रह कर दैनिक जीवन के मूलभूत व्यावहारिक सूत्र थे जिनका पालन करना उनके आश्रमों में प्रकट रूप से विहित दैनिक कर्तव्य की श्रेणी में था. अर्थ नीति, ग्रामीण विकास , कुटीर उद्योग, शिक्षा आदि के क्षेत्रों में वे नैतिक बल और मानवीय मूल्यों की रक्षा करते हुए व्यवस्था के पक्षधर थे. वे मालिक के बदले ट्रस्टी के भाव में विश्वास करते थे. उनके सामने भारत की विशाल ग्रामीण जन संख्या थी जिसके लिए रोजगार जरूरी था . अधिकाधिक लोगों को काम मिले यह सोच कर वह छोटी मशीनों , स्वदेशी और स्वावलंबन पर जोर देते थे. सत्ता का विकेंद्रीकरण भी वह गाँव तक पहुंचाना चाहते थे. परन्तु उनका व्यावहारिक आदर्शवाद जो आधुनिकता और उपनिवेशवाद के

विकल्प के रूप में था उन लोगों को जिन्हें भारत की बागडोर हा थों में मिली रास नहीं आया . नए भारत की परिकल्पना इन सबसे मेल नहीं खाती थी . प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू की समाजवादी दृष्टि में कई तरह की पहल शुरू हुई. उनकी आधुनिक दृष्टि के अनुरूप विज्ञान और प्रौद्योगिकी को बढ़ावा, भारी उद्योग , बड़े बाँध, आधार संरचना , कृषि आदि के क्षेत्रों में बहुत सारे प्रयास शुरू हुए. पश्चिम की तुलना में हम अविकसित थे और विकास ही सब समस्याओं का समाधान है. इन सबके लिए नौकरशाही ही माध्यम बनी . समय के साथ बहुत कुछ हुआ. धीरे धीरे हरित क्रान्ति आई , खाद्यान्न उत्पादन भी बढा , शिक्षा केंद्र भी खूब बढे और औद्योगिक विकास को गति भी मिली. इन सबमें तर्क यही था कि अपनी परम्परा से मुक्त हो कर आधुनिकता को आत्मसात करना ही एक मात्र उपाय है. सेकुलर और वैज्ञानिक नजरिया ही अच्छे भविष्य की और ले जा सकेगा. स्वतन्त्र भारत में संविधान के तहत देश के सामाजिक जीवन में भी बदलाव आया . युवा वर्ग तक मताधिकार आया. पर सत्तर का दशक आते-आते विकास के तर्क की सीमाएं प्रकट होने लगीं . उसके साथ बहुत कुछ अवांच्छित भी दिखने लगा और उससे जुड़े सामाजिक तनाव भी उभरने लगे . छोटे किसानों की मुश्किलें बढ़ने लगीं. जाति के सवाल भी सामाजिक अस्मिता और राजनीति में शामिल होने लगा. जातिगत भेद - भाव और ध्रुवीकरण के साथ ही सामाजिक खटास भी उभरने लगी. स्वास्थ्य , गरीबी और शिक्षा के लिए जरूरी संरचना टूटने बिखरने लगी . क्षेत्र , समुदाय , भाषा , धर्म और जाति आदि को ले कर अस्मिताओं की रचना की जाने लगी . सर उठाती महत्वाकांक्षाओं के लिए, विशेषत : सत्ता के हलकों में , कुछ भी जोड़- तोड़ वाजिब लगने लगी.

बीसवीं सदी का अंतिम दशक अर्थ की सत्ता की प्रतिष्ठा को चरम पर ले जाने वाला साबित हुआ. पूंजीवाद ही सबका आधार बन गया. सूचना और संचार की तकनीकी प्रगति के साथ भूमंडलीकरण का दौर चला जिसमें उद्योग और नगर ही सब कुछ के केंद्र में पहुँच गया. उदारीकरण और निजीकरण की बयार में पुराना ढांचा भरभराने लगा. इस अघोषित उपनिवेशीकरण में लोक की जगह निजी की प्रभुता स्थापित होने लगी . विश्व गाँव बनाने की ओर आगे बढे पर उसकी ओट में बहुत कुछ तहस नहस भी हुआ . विस्थापन, प्रदूषण , प्रकृति के विनाश ने किसी अंतहीन विकास के खोखलेपन को जाहिर कर दिया है. तकनीकी प्रगति सबका समाधान नहीं दे पा रही है. इक्कीसवीं सदी के दो दशक बीतते - बीतते कोविड की विश्वव्यापी महामारी ने सबको बेबस बना दिया है. जीवन की व्यवस्थाएं कब पटरी पर आएंगी इस बारे में कुछ कहना मुश्किल है पर मनुष्य के गैर जिम्मेदार व्यवहारों की झांकी जरूर दिखती रही है. आदमी कितना सुधरेगा कहना मुश्किल है.

इस दौर में भारत अपनी सारी अस्त व्यस्तताओं , विविधताओं और जटिलताओं के साथ समय की चुनौतियों को स्वीकार करता रहा है. बहुत सारे अर्थों में देश में लोकतंत्र का पाया मजबूत हुआ है और देश अपनी चुनौतियों को खुद सुलझाने में कामयाब रहा है. जन संख्या बढी है , लोगों की आशा आकांक्षा भी बढी है और साथ ही लोगों का मानसिक क्षितिज भी विस्तृत हुआ है. इसके चलते एक तरह का तुलनात्मक असंतोष भी बढ़ा है. वर्तमान नेतृत्व देश की समस्याओं के साथ टकरा रहा है . वह भारतीय सन्दर्भ में , स्वदेशी ढंग से मार्ग भी तलाश रहा है पर काल देवता भी कठिन परीक्षा ले रहे हैं . संसदीय लोक तंत्र का हमारा इतिहास बताता है कि देश हर कठिनाई को पार करता रहा है. महामारी के दौर में सारी कठिनाइयों के बावजूद समस्याओं को सुलझाने की भरपूर कोशिश की गई.

ISSN : 2583-2948

वस्तुत: स्वास्थ्य , शिक्षा , विज्ञान प्रौद्योगिकी आदि के क्षेत्रों में देश की प्रगति उल्लेखनीय है पर निहित स्वार्थ की शक्तियों ने हमारे कार्य की गुणवत्ता को कलुषित किया है. हमारी मू ल्य दृष्टि में विवेक और प्रतिबद्धता में कमी आने से लोक संग्रह के समावेशी विकास का लक्ष्य अभी भी पूरा नहीं हो सका है . ऐसे लोग भी हैं जो न्याय , नीति लोक हित सबको भूल कर भ्रष्ट तरीकों से संपत्ति बनाते हैं . पर सामाजिक सौहार्द , पारस्परिक सहयोग और विश्वास से ही हम आगे बढ़ सकेंगे . इसके लिए निहित स्वार्थ छोड़ कर देश को विचार के केंद्र में लाना होगा. अमृत महोत्सव की सार्थकता इसी में है कि अपने चिंतन में भारत को प्राथमिकता दें और हमारे मन , विचार , कर्म , विमर्श आदि सभी में एकसूत्रता हो . हम सब की दृष्टि में समान की यह साधना मातृभूमि की रक्षा और उन्नयन के लिए आवश्यक है .

संगच्छध्वं संवधध्वं सं वो मनांसि जानताम्

समानो मंत्र: समिति: समानी समानं मन: सह चित्तमेषाम्

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:
Mind is the cause of human suffering and liberation.